

## 12. भारतीय ज्ञान प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का महत्व

डॉ. वन्दना गुप्ता

सहायक आचार्य

प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु।

ईमेल- [vandanahistory1@gmail.com](mailto:vandanahistory1@gmail.com)

### शोध सारांश

ज्ञान, विज्ञान और जीवन दर्शन की समग्रता से भारतीय ज्ञान प्रणाली का विकास हुआ है। जिसका विस्तार अनुभव, अवलोकन, अनुसंधान, अनुप्रयोग और विश्लेषण से संभव हुआ है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का विशेष महत्व है। शैक्षिक संस्कारों का अर्थ होता है शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को ज्ञान, नैतिकता, समाजिक मूल्यों और सही व्यवहार की सीख प्राप्त कराना। इस परंपरा ने हमारी शिक्षा, कला, प्रशासन, कानून, न्याय, स्वास्थ्य, विनिर्माण और वाणिज्य को प्रभावित किया है। भारत की बौद्धिक एवं अध्यात्मिक समृद्धि में वैविध्यपूर्ण तथा व्यापक ज्ञान प्रणाली का अहम् योगदान रहा है। गणित, विज्ञान, धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र से लेकर खगोलशास्त्र और गहन मौखिक परम्पराओं का समावेश होकर एवं शैक्षिक संस्कारों से परिष्कृत होकर भारतीय ज्ञान का निर्माण हुआ है।

**मुख्य शब्द-** भारतीय ज्ञान प्रणाली, शैक्षिक संस्कार, चरित्र निर्माण, समाजिक मूल्य, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

**प्रस्तावना :** गीता में उद्धृत 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'<sup>1</sup> अर्थात् ज्ञान से पवित्र संसार में कुछ भी नहीं है एवं 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वही है जो मुक्त करे - के संस्कार वाली भारतीय ज्ञान प्रणाली प्राणी मात्र के कल्याण एवं उत्थान की शिक्षा देती है। चरित्र निर्माण से लेकर मनुष्य के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य भारतीय शिक्षा में निहित है। भारतीय ज्ञान संस्कार का पाथेय नितनूतन चिरपुरातन है। विवेक प्रदान करने के सर्वश्रेष्ठ माध्यम के रूप में ज्ञानार्जन ही रहा है। वैदिक कालीन समाज में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में ज्ञान की प्रतिष्ठा सर्वोपरि मानी जाती रही है। भारतीय समाज में शिक्षा को सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है। शिक्षा परिवार, समाज और राष्ट्र का साझा दायित्व है। यही भारतीय ज्ञान प्रणाली का संस्कार है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय मनीषी अपने विविध उत्तरदायित्वों के साथ शिक्षाशास्त्री के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। भारतीय समाज में ज्ञान को सबसे पवित्र माना गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य और लक्ष्य भी मनुष्य का सर्वांगीण विकास से ही जुड़ा है<sup>2</sup>

प्रत्येक मनुष्य जन्म के साथ कुछ गुण और कुछ अवगुण लेकर पैदा होता है। उस पर पूर्व जन्मों के संस्कार भी पड़ते हैं। ऐसी मान्यता हिन्दू धर्म की है। अतः आयु वृद्धि के साथ-साथ उस पर नये संस्कार भी पड़ते रहते हैं। भारतीय जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। संस्कार शब्द की उत्पत्ति 'कृ' धातु में सम उपसर्ग लगाकर की गयी है। इसका अर्थ है- शुद्धि, परिष्कार, सुधार एवं मन, रुचि, आचार-विचार को परिष्कृत तथा उन्नत करने का कार्य। वास्तव में संस्कृति शब्द

संस्कार से बना है। इसका अर्थ है-परिमार्जित, परिष्कृत सुधारा हुआ, ठीक किया हुआ। अतः जीवन की बहुमूल्य विशिष्टता, सम्पदा और चरित्र निर्माण का आधार संस्कार है।<sup>3</sup> इन अर्थों में मानव में जो दोष हैं, उनका शोधन करने एवं उन्हें सुसंस्कृत करने के लिए ही संस्कारों का प्रावधान किया हुआ है। संस्कारों के द्वारा मानवीय मन को एक विशिष्ट वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मल, सन्तुलित एवं सुसंस्कृत बनाया जाता है। जीवन में काम आने वाले सत्यवृत्तियों का बीजारोपण भी इन संस्कारों के समय होता है। यदि किसी बालक के सभी संस्कार ठीक रीति से समुचित वातावरण में किये जायें, तो उसका व्यक्तित्व सुविकसित होता है। संस्कार पद्धति के द्वारा उसके मनोविकारों का निराकरण कर उसकी सृजनात्मक शक्ति को बढ़ावा देता है। अतः पुराने संस्कारों को प्रभावित करके उनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन कर अनुकूल संस्कारों का निर्माण करने की प्रक्रिया संस्कार कहलाती है।<sup>4</sup>

### भारतीय ज्ञान प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का विवेचन

**संस्कारों का महत्त्व:** मानव जीवन में संस्कारों का अत्यधिक महत्त्व है। संस्कारों का सर्वाधिक महत्त्व मानवीय चित्त की शुद्धि के लिए है। संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य का चरित्र निर्माण होता है और विचारों के अनुरूप संस्कार क्योंकि चरित्र ही वह धुरी है, जिस पर मनुष्य का जीवन सुख, शान्ति और मान-सम्मान को प्राप्त करता है। संस्कार के द्वारा मानव चरित्र में सदगुणों का संचार होता है, दोष, दुर्गुण दूर होते हैं। मानव जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक सार्थक बनाने तथा सत्य-शोधन की अभिनव व्यवस्था का नाम संस्कार है। संस्कारों का मूल प्रयोजन आध्यात्मिक भी है तथा नैतिक विकास का भी है क्योंकि मानव जीवन को अपवित्र एवं उत्कृष्ट बनाने वाले आध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है।<sup>5</sup>

श्रेष्ठ संस्कारवान मानव का निर्माण ही संस्कारों का मुख्य उद्देश्य है। संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य में शिष्टाचरण एवं सभ्य आचरण की प्रवृत्ति का विकास होता है। इस अर्थ में सर्वसाधारण के मानसिक, चारित्रिक एवं भावनात्मक विकास के लिए सर्वांग सुन्दर विधान संस्कारों का है।

संस्कार एक सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अभ्यास या प्रक्रिया को सूचित करता है। यह एक शब्दिक रूप से व्यक्ति के जीवन में नियमित रूप से किया जाने वाले धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों को संदर्भित करता है। संस्कारों का महत्त्व विभिन्न समाजों और संस्कृतियों में भिन्न हो सकता है, लेकिन सामान्यतः इन्हें व्यक्ति के धार्मिक और सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। संस्कार व्यक्ति को सामाजिक नियमों, मूल्यों और धार्मिक अभ्यासों के साथ परिचित कराते हैं। मानव जीवन के साथ संस्कारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह बात भारतीय सन्दर्भ में और भी समीचीन है। मन, क्रम, वचन को परिष्कृत तथा उन्नत करने का कार्य संस्कारों के माध्यम से ही संभव है। प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली मानवीय मूल्य केन्द्रित रही है। वैसे तो भारतीय सन्दर्भ में मानव जीवन आरम्भ से पूर्णता के क्रम को 16 संस्कारों के माध्यम से नियोजित किया गया है। लेकिन यह शोध पत्र शैक्षिक संस्कार या ज्ञानार्जन के प्राचीन एवं अर्वाचीन सन्दर्भों पर केन्द्रित है। यह विषय ऐसे समय में जबकि भारतीय शिक्षा निति जिसे राष्ट्रीय शिक्षा निति 2020 के नाम से जाना जाता है लागू की जा चुकी है, समीचीन है।<sup>6</sup>

विभिन्न शैक्षिक संस्कार एवं उनका स्वरूप: हमारे भारतीय धर्म के अनुसार सोलह संस्कारों द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिष्कार किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के सोलह संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन, सीमांतोयंत्रण, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवं अंत्येष्टि शामिल हैं। किन्तु शैक्षिक संस्कारों में मुख्यतः कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त एवं समावर्तन ही प्राचीन भारत में शिक्षा ग्रहण करने से पूर्व उसे जिन प्रमुख संस्कारों के माध्यम से पात्र बनाया जाता था उसमें-

1. **विद्यारम्भ संस्कार:** यह आयु के पांचवें वर्ष में तब सम्पन्न कराया जाता है, जब बालक शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता है। शिक्षा मात्र शिक्षा न रहकर विद्या बने, इसीलिए गणेश व लक्ष्मी के पूजन के बाद विद्या तथा ज्ञानवर्द्धन करने वाले इस संस्कार को सरस्वती का नमन कर पूर्ण किया जाता है। शिक्षा के उपकरण दवात, कलम, कॉपी, पट्टिका को वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर पूजन किया जाता है। इस क्रिया को परमार्थ प्रयोजन के रूप में किया जाता है। विद्यार्थी गुरु को प्रणाम करता है। बालक श्रेष्ठ मानव बने। बालक पट्टी या कॉपी पर लिखता है, तो उस पर अक्षत छुड़वाकर बालक को तिलक लगाकर आशीर्वाद देते हैं। बालक श्रेष्ठ लोकसेवी व नागरिक बने, यही कामना की जाती है। काणे जी अपनी पुस्तक में इस संस्कार का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि विद्यारम्भ संस्कार तीसरे वर्ष (चौल संस्कार के समय) से आठ वर्ष (ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार के समय) तक बच्चों की शिक्षा के विषय में गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र मौन हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस ओर एक हलका प्रकाश मिलता है। ऐसा उद्धृत है कि चौल के उपरान्त राजकुमार को लिखना एवं गणित सीखना पड़ता था और उपनयन के उपरान्त उसे वेद, आन्वीक्षिकी (तत्त्वज्ञान), वार्ता (कृषि एवं घन-विज्ञान) व दण्डनीति (शासन कला) १६ वर्ष तक पढ़नी पड़ती थी और तभी गोदान के बाद उसका विवाह होता था।<sup>7</sup> कालिदास<sup>8</sup> ने लिखा है कि अज ने पहले अक्षर सीखे और तब वह संस्कृत-साहित्य के सिन्धु में उतरा। बाण ने सम्भवतः अर्थशास्त्र की बात ही दुहरायी है। बाण की कादम्बरी में राजकुमार चन्द्रापीड ने विद्यामन्दिर में छः वर्ष की अवस्था में प्रवेश किया और वहाँ १६ वर्ष को अवस्था तक रहकर सभी प्रकार की कलाओं एवं विज्ञानों का अध्ययन किया। उत्तररामचरित<sup>9</sup> में आया है कि कुश एवं लव ने चौल के उपरान्त एवं उपनयन के पूर्व वेद के अतिरिक्त अन्य विद्याएँ सीखी।

ऐसा प्रतीत होता है, कि ईसा की आरंभिक शताब्दियों से विद्यारम्भ नामक संस्कार सम्पादित किया जाने लगा था। अपरार्क एवं स्मृतिचन्द्रिका ने मार्कण्डेयपुराण के श्लोक उद्धृत करके विद्यारम्भ का वर्णन किया है।<sup>10</sup> बच्चे के पांचवें वर्ष कार्तिक शुक्लपक्ष के बारहवें दिन से आषाढ शुक्ल पक्ष के ११ दिन तक किसी दिन किन्तु प्रथम, छठी, १५वीं तथा रिक्त तिथियों (चोथी, नवी एवं चौदहवीं) को तथा शनिवार एवं मंगलवार को छोड़कर विद्यारम्भ संस्कार करना चाहिए। हरि (विष्णु) लक्ष्मी, सरस्वती, सूत्रकारों, एवं कुलविद्या की पूजा करके अग्नि में घृत की आहुतियाँ देनी चाहिए। इसके उपरान्त दक्षिणा आदि से ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिए। अध्यापक को पूर्व दिशा में तथा बच्चों को पश्चिम दिशा में बैठना चाहिए। इसके उपरान्त गुरु पढ़ाना आरम्भ करता है और बच्चा ब्राह्मणों का आशीर्वाद ग्रहण करता है।

विश्वामित्र, देवल तथा अन्य ऋषियों की बातें उद्धृत करके संस्कारप्रकाश ने लिखा है कि विद्यारम्भ पांचवें वर्ष तथा कम-से-कम उपनयन के पूर्व अवश्य कर डालना चाहिए। इसने नृसिंह को उद्धृत करके कहा है कि सरस्वती तथा

गणपति की पूजा के उपरान्त गुरु की पूजा करनी चाहिए। आधुनिक काल में लिखना सीखना किसी शुभ मुहूर्त में आरम्भ कर दिया जाता है, यह शुभ मुहूर्त बहुधा आश्विन मास के शुक्लपक्ष की विजयादशमी तिथि को पड़ता है। सरस्वती एवं गणपति के पूजन के उपरान्त गुरु का सम्मान किया जाता है, ओर बच्चा "ओम् नमः सिद्धम्" दुहराता है और पट्टी पर लिखता है। इसके उपरान्त उसे अ, आ... इत्यादि अक्षर सिखाये जाते हैं। संस्काररत्नमाला ने इस संस्कार का 'अक्षरस्वीकार' नाम दिया है, जो उपयुक्त ही है। पारिजात में उद्धृत बातों के अनुसार संस्काररत्नमाला ने होम तथा सरस्वती, हरि, लक्ष्मी, गणपति, सूत्रकारों एवं स्वविद्या के पूजन की चर्चा की है।<sup>1</sup>

2. **उपनयन संस्कार:** यज्ञोपवीत, अर्थात् उपनयन संस्कार दूसरा जन्म है। इस संस्कार में बालक को वैदिक मन्त्रोच्चारों के बीच विधि-विधान द्वारा तीन बंटे हुए धागों की पतली डोरी धारण करवाई जाती है। इसमें नौ धागे, नौ गुणों (विवेक, पवित्रता, बलिष्ठता, शान्ति, साहस, स्थिरता, धैर्य, कर्तव्य, समृद्धि) प्रतीक माने जाते हैं। यज्ञोपवीतधारी इसे मन्त्रोच्चार के साथ कन्धों पर धारण करते हैं और श्रेष्ठ कार्यों का संकल्प लेते हैं। भारतीय संस्कृति में लिंग, जाति, वर्ण आदि किसी भी प्रकार का भेदभाव किये बिना यज्ञोपवीत कराने की बात कही गयी है। यज्ञोपवीत व शिखा के बिना किसी भी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण नहीं होता है।

'उपनयन' का अर्थ है "पास या निकट ले जाना।" किन्तु किसके पास ले जाना ? सम्भवतः आरम्भ में इसका तात्पर्य था "आचार्य के पास (शिक्षण के लिए) ले जाना।" हो सकता है; इसका तात्पर्य रहा हो नवशिष्य को विद्यार्थीपन की अवस्था तक पहुंचा देना। कुछ गृह्यसूत्रों से ऐसा आभास मिल जाता है, यथा हिरण्यकेशि० (१।५१२) के अनुसार, तब गुरु बच्चे से यह कहलवाता है "मैं ब्रह्मचर्य को प्राप्त हो गया हूँ। मुझे इसके पास ले चलिए। सविता देवता द्वारा प्रेरित मुझे ब्रह्मचारी होने दीजिए। मानव एवं काठक ने 'उपनयन' के स्थान पर 'उपायन' शब्द का प्रयोग किया है। काठक के टीकाकार आदित्यदर्शन ने कहा है कि उपानय, उपनयन, मोन्जीबंधन, बटुकरण, व्रतवन्ध समानार्थक हैं।

इस संस्कार के उद्गम एवं विकास के विषय में कुछ चर्चा हो जाना आवश्यक है, क्योंकि यह संस्कार सब संस्कारों में अति महत्वपूर्ण माना गया है। उपनयन संस्कार का मूल भारतीय एवं ईरानी है, ऋग्वेद<sup>12</sup> में ब्रह्मचारी शब्द आया है। 'उपनयन' शब्द दो प्रकार से समझाया जा सकता है- 1. बच्चे को आचार्य के सन्निकट ले जाना, 2. वह संस्कार या कृत्य जिसके द्वारा बालक आचार्य के पास ले जाया जाता है। पहला वर्ष आरम्भिक है, किन्तु कालान्तर में जब विस्तारपूर्वक यह कृत्य किया जाने लगा तो दूसरा अर्थ भी प्रयुक्त हो गया। आपस्तम्बधर्मसूत्र<sup>13</sup> ने दूसरा अर्थ लिया है। उसके अनुसार उपनयन एक संस्कार है जो उसके लिए किया जाता है, जो विद्या सीखना चाहता है, "यह ऐसा संस्कार है जो विद्या सिखाने वाले को गायत्री मन्त्र सिखाकर किया जाता है।" स्पष्ट है, उपनयन प्रमुखता गायत्री उपदेश है। इस विषय में जैमिनि<sup>14</sup> भी दृष्टव्य है।

3. **वेदारम्भ:** यज्ञोपवीत संस्कार के साथ प्राचीनकाल में वेदारम्भ की शिक्षा प्रारम्भ होती थी। वेद जीवन विकास, जीवन एवं परिष्कार के महत्त्व को दर्शाते हैं। वेदों की शिक्षा प्रारम्भ करने से पूर्व बालक श्रद्धापूर्वक गुरु का पूजन करता है। इसके बाद उससे भिक्षा मांगने की क्रिया पूर्ण करवायी जाती है। धर्मसूत्र के अनुसार वंश परंपरा से विद्या संपन्न एवं गंभीर व्यक्ति से ही उपनयन संस्कार एवं वेदाध्यापन कराना चाहिए और जब तक वह धर्म मार्ग से च्युत नहीं होता उससे

पढ़ते जाना चाहिए। आचार्य को ब्राह्मण, वेद में एकनिष्ठ, धर्मज्ञ, कुलीन शुचि, श्रोत्रिय होना चाहिए, अपनी शाखा में प्रवीण एवं अप्रमादी होना चाहिए। आपस्तम्बधर्मसूत्र<sup>15</sup> ने उसी को श्रोत्रिय कहा है जिसने वेद की एक शाखा पढ़ ली हो। आपत्काल में अर्थात् जब ब्राह्मण न मिले तब क्षत्रिय या वैश्य को आचार्य बनाना चाहिए, किन्तु विद्यार्थी ऐसे गुरु के चरण नहीं पखार सकता<sup>16</sup> मनु<sup>17</sup> ने शुभा विद्या (प्रत्यक्ष लाभकारी ज्ञान) के लिए ब्राह्मण को शूद्र से भी सीखने के लिए छूट दी है। यही बात शान्तिपर्व<sup>18</sup> में भी है। मिताक्षरा<sup>19</sup> ने कहा है कि ब्राह्मण द्वारा प्रेरित किये जाने पर ही क्षत्रिय या वैश्य को शिक्षण कार्य करना चाहिए, अपने मन से नहीं। क्षत्रिय शिक्षण कार्य से अपनी जीविका नहीं चला सकता। शिक्षण कार्य मौखिक था सर्वप्रथम प्रणव, व्याहृतियाँ एवं गायत्री ही पढाई जाती थी इसके उपरांत ही वेद के अन्य भाग पढाये जाते थे।

प्राचीन भारतीय वेदाध्ययन की प्रणाली पर संक्षिप्त विवेचन यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। शांखायनगृह्यसूत्र<sup>20</sup> ने वर्णन किया है- 'गुरु पूर्व या उत्तर मुख बैठता है, शिष्य उसके दाहिने उत्तराभिमुख बैठता है, यदि दो से अधिक शिष्य हों तो स्थान के अनुसार जैसा चाहें बैठ सकते हैं। शिष्य को उच्चासन पर नहीं बैठना चाहिए और न गुरु के साथ उसी आसन पर बैठना चाहिए; उसे अपने पैर नहीं फैलाने चाहिए, अपनी बाहु से घुटनों को पकड़कर भी नहीं बैठना चाहिए। किसी वस्तु का सहारा भी नहीं लेना चाहिए। उसे अपने पाँवों को गोदी में नहीं रखना चाहिए और न उन्हें कुल्हाड़ी की भांति पकड़ना चाहिए। जब शिष्य "उच्चारण कीजिए, महोदय" कहता है, तब आचार्य उससे 'ओम्' कहलवाता है और शिष्य को 'ओम्' कहना चाहिए। इसके उपरान्त शिष्य लगातार पढ़ना आरम्भ कर देता है। पढ़ने के उपरान्त शिष्य को गुरु के पाँव छूने चाहिए और कहना चाहिए, "महोदय, अब हमने समाप्त कर लिया", यह कहकर चला जाना चाहिए:

**4. केशान्त संस्कार:** इस संस्कार में सिर के तथा शरीर के अन्य भाग के केश बनाये जाते हैं। पारस्कर याज्ञवल्क्य एवं मनु<sup>21</sup> ने केशान्त शब्द का तथा आश्वलायनगृह्य एवं अन्य गृह्यसूत्रों ने गोदान शब्द का प्रयोग किया है। शतपथ ब्राह्मण<sup>22</sup> में दीक्षा के विषय की चर्चा होते समय कान के उपर सिर के एक भाग के बाल बनाने को 'गोदान' कहा गया है। अधिकांश स्मृतिकारों ने इस संस्कार को १६वें वर्ष में करने को कहा है। कब से १६ वर्ष या कोई भी वर्ष गिना जाना चाहिए? इस विषय में मतभेद है। बौधायनधर्मसूत्र<sup>17</sup> ने गर्भाधान से ही गणना की है। इसी नियम के अनुसार मिताक्षरा<sup>23</sup> तथा कुल्लूक<sup>24</sup> ने ब्राह्मणों के लिए गर्भाधान से १६वाँ वर्ष तथा अपरार्क ने जन्म से १६ वर्ष माना है। केशांत १६वें वर्ष हो जाना चाहिए यदि उपनयन १६ वर्ष के उपरान्त हो तो केशान्त संस्कार किया ही नहीं जायेगा। बालक के केश किसी देवस्थान में उतारे जाते हैं। दूसरे या तीसरे वर्ष में बाल उतारने के बाद शिखाबन्धन होता है।

**5. समावर्तन संस्कार:** वेदाध्ययन के उपरांत का स्नान –कर्म तथा गुरु गृह से लौटते समय का संस्कार स्नान या समावर्तन कहा जाता है। मनु ने स्नान तथा समावर्तन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है – “द्विज गुरु से अज्ञापित होने पर स्नान करके घर लौट सकता है और अपने गृहसूत्र के नियमों के अनुसार किसी कन्या से विवाह कर सकता है।”<sup>25</sup> अपरार्क ने स्नान एवं समावर्तन में अंतर बताया है-

1. स्नान का तात्पर्य है विद्यार्थी जीवन की परिसमाप्ति, अतः जो जीवन भर ब्रह्मचारी रहना चाहता है वह यह संस्कार नहीं भी कर सकता।

2. समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है –गुरु गृह से अपने गृह को लौट आना | शिक्षा की समाप्ति पर किया जाने वाला यह संस्कार पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला शिक्षार्थी गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर पूर्ण करता है और अपने परिवार, समाज तथा देश के प्रति सभी कर्तव्यों को पूर्ण करता है।

### निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में, विशेषतः हिन्दुओं में किये जाने वाले इन संस्कारों का आज भी विशेष महत्त्व है। यद्यपि आज की व्यस्ततम जिन्दगी में इन संस्कारों का पूर्ण विधि-विधान से पालन नहीं हो पाता, तथापि हिन्दू कुछ बदले हुए स्वरूपों में इसका पालन करते हैं। वस्तुतः हिन्दू धर्म के ये सरकार मानव व्यक्ति के श्रेष्ठ सन्तुलित व्यक्तित्व के निर्माण में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आधुनिक सभ्यता के प्रभाव में इन संस्कारों का स्वरूप अवश्य ही बदला है, किन्तु ये संस्कार अपने आदर्शों और श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों एवं विश्वास के कारण आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में थे। ये संस्कार चरित्र निर्माण के प्रमुख आधार कहे जा सकते हैं। भारतीय संस्कार यह बताते हैं कि जीवन मृत्यु के साथ समाप्त नहीं हो जाता। व्यक्ति निर्माण से ही राष्ट्र निर्माण संभव है, जिसका आधार शिक्षा ही है और रही है।

### सन्दर्भ सूची :

1. गीता 4/38A
2. आचार्य लक्ष्मीचन्द्र, भारतवर्षे वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1997, pg.203|
3. आचार्य लक्ष्मीचन्द्र, भारतवर्षे वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1997, pg. 34|
4. झा, डॉ. सुरेन्द्र, प्राचीन शिक्षा पद्धति, आशुतोष प्रकाशन, लखनऊ, 2004, pg. 67|
5. मिश्र, प्रो. लोकमान्य, पुरातनी शिक्षा, मृगाक्षी प्रकाशन, लखनऊ, 2011, pg. 84|
6. रस्तोगी, श्रीमती उर्मिला, मनुस्मृति, परिमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005, pg. 59|
7. संस्काररत्नमाला pg. 904|
8. रघुवंश 3/28
9. उत्तररामचरित, अंक 2
10. अर्थशास्त्र 1/5 |
11. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, (प्रथम भाग), हिन्दी समिति, लखनऊ, 2000, pg.206-07|
12. ऋग्वेद, 10/109/5
13. आपस्तम्बधर्मसूत्र, 1/1/1/19|
14. जैमिनि, 6/1/35|
15. आपस्तम्बधर्मसूत्र 2/3/6|
16. आप० 60 सू० 2/214/25- 28; गौतम० 711-3; बो० 50 सू० 1/2/40-42 एवं मनु 2/241.
17. मनुस्मृति 2/238



18. शान्तिपर्व 165/31
19. याज्ञ० 1/119
20. शांखायनगृह्यसूत्र 4/8
21. याज्ञवल्क्य 1/36 एवं मनु० 2/65
22. शतपथ ब्राह्मण 3/1/2/4
23. बौधायन, 10
24. मिताक्षरा 1/36
25. कुल्लूक 2/65
26. मनुस्मृति ¾
27. पाण्डेय, श्री उमेश चन्द्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, चौखम्भा संस्कृत ऑफिस सिरीज, वाराणसी, 1967|
28. द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000|
29. जायसवाल, डॉ. सीताराम, भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा समस्यायें, , प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ|
30. रमेश, प्रो. वाई.एस., भारतीय संस्कृति, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2007|
31. <https://www.egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/71644/1/Unit-24.pdf>.
32. <https://www.education.gov.in/nep/indian-knowledge-systems>.

\*\*\*